समाज विकासमाला

सूर के पद

रस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ६४

सूर के पद

जीवन-परिचय और चुने हुए पद
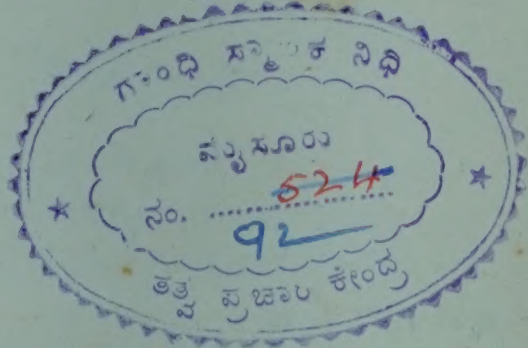
संग्राहक

मुकुल

संपादक

यशपाल जैन

१९५९

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५९
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
युगांतर प्रेस,
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है, तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोल-चाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

इस पुस्तक-माला को हमने इन्हीं बातों को सामने रखकर चालू किया है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में पाठकों को सुधार की गुंजाइश मालूम हो, तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

पाठकों से

इस माला में आप अनेक भक्त-कवियों का परिचय और उनकी रचनाएं पढ़ चुके हैं। इस पुस्तक में सूरदास की संक्षिप्त जीवनी और उनके चुने हुए पद पढ़ लीजिये। जिस तरह राम के साथ तुलसीदास और वाल्मीकि का नाम जुड़ा हुआ है, उसी तरह कृष्ण भगवान के साथ सूरदास का। अपने पदों में उन्होंने भक्ति की बड़ी ही पवित्र धारा बहाई है। उन्हें जो भी पढ़ता है, उसीका चित्त गद्गद् हो जाता है।

ऐसी पुस्तकें अधिक-से-अधिक पाठकों द्वारा पढ़ी जानी चाहिए। आप इस काम में मदद करें।

—संपादक
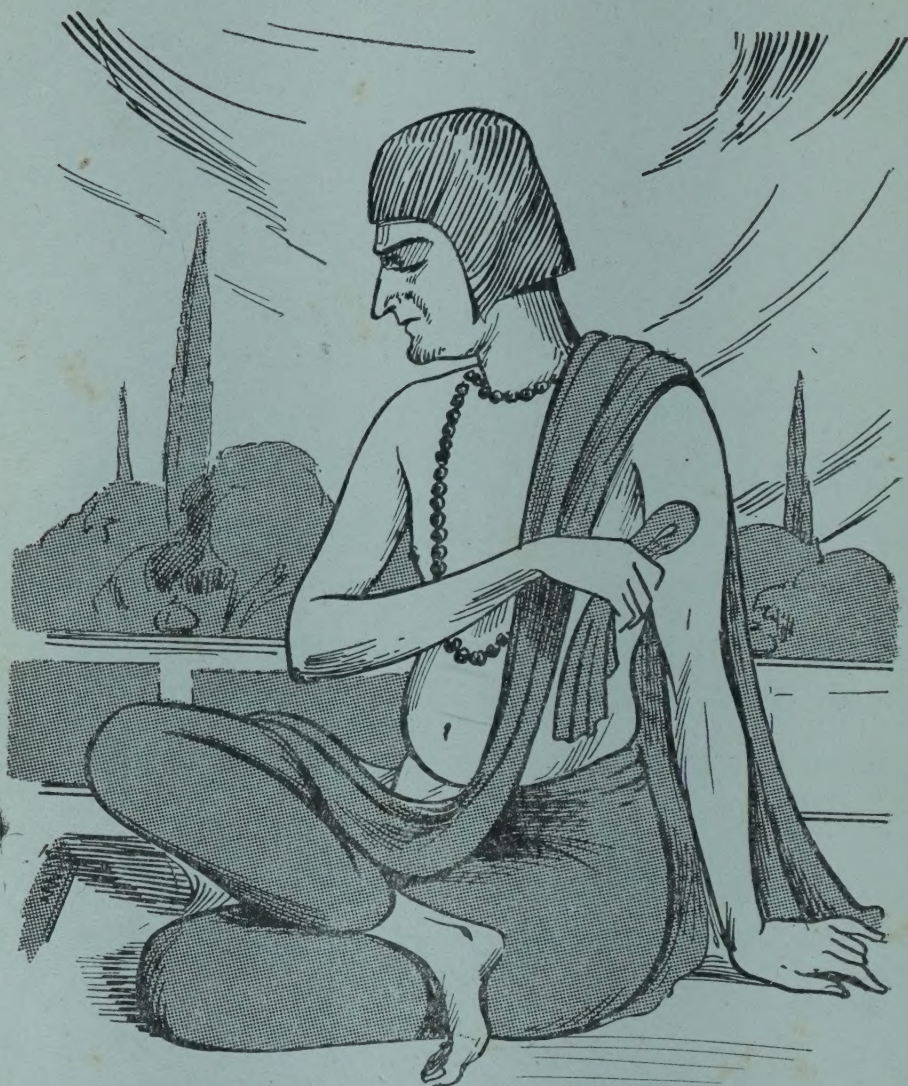
संत सूरदास

सूर के पद

: १ :

सूरदास कौन थे ?

हमारे देश में सूरदास को कौन नहीं जानता ? भगवान् कृष्ण की लीला और उनकी भक्ति की गंगा बिना सूरदास के कहां संभव थी ? "मैयारी मैं नहिं माखन खायो", "यशोदा हरि पालने झुलावे", "चरन कमल वंदौं हरि राई", "मो सम कौन कुटिल खल कामी", आदि पद घर-घर में प्रेम और भक्ति-भाव से गाये जाते हैं। किसके हैं ये पद ? सूरदास के ही तो हैं। छोटा हो या बड़ा, अमीर हो या गरीब, पढ़ा-लिखा हो या बेपढ़ा, सूर के पदों को पढ़कर या सुनकर कोई भी गद्‌गद् हुए बिना नहीं रहता। ऐसी है उनकी महिमा। प्यार से लोग उन्हें 'सूर' कहते हैं।

मथुरा-आगरा जानेवाली सड़क पर दिल्ली से कुछ ही मील पर एक गांव है रुनकता। आज से ४७५ वर्ष पहले, संवत् १५४० में, वहीं सूरदास का जन्म हुआ था। उनका बचपन का नाम सूरजदास था। पिता

का रामदास। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके छः भाई और थे, लेकिन वे सब लड़ाई में मारे गये।

कहते हैं, सूरदास जन्म से अंधे नहीं थे। इनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी कि जिससे दुखी होकर अपने ही हाथों से इन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं। कथा इस प्रकार है। एक दिन सूरदास किसी काम से एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे। रास्ते में किसी सुंदरी पर इनकी निगाह पड़ गई। उसे एकटक देखने लगे। वह जाने लगी तो वह भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे। वह एक मकान के अंदर गई और भीतर जाकर उसने दरवाजा बंद कर लिया। सूरदास वैसे ही बाहर खड़े रहे। कुछ समय बाद किसी काम से वह स्त्री बाहर आई तो देखती क्या है कि सूरदास खड़े हैं। वह बोली, "यहां क्यों खड़े हो?"

सूरदास चुप। उसकी ओर एकटक देखते रहे। उस स्त्री ने कहा, "महाराज, आप क्या चाहते हैं? मेरे लिए कोई सेवा?"

स्त्री ने ये शब्द कहे तबतक सूरदास की अंतर की आंखें खुल चुकी थीं। वह बोले, "माई, दो सुइयां ला दो।"

स्त्री समझी नहीं। पर यह सोचकर कि ब्राह्मण मांग रहा है, उसने दो बड़ी सुइयां लाकर दे दीं। सूरदास

ने उन्हें हाथ में लिया और झट अपनी आंखों में घुसेड़ लिया। फिर घर-बार छोड़कर जंगल में भटकने लगे। बाहरी आंखों की ज्योति चली जाने पर उनके अंदर की ज्योति जग उठी। भगवान् कृष्ण के चरणों में उनका चित्त रम गया। फिर क्या था! उनके मुंह से कृष्ण की भक्ति का सोता फूट निकला। एकतारा हाथ में लेकर वह भगवान् कृष्ण की भक्ति के पद गाते फिरने लगे।

एक दिन की बात कि वह घूमते-घूमते किसी खड्ड या झाड़ी में फंस गये। किसी राह चलते ने उनका हाथ पकड़कर रास्ते से लगा दिया। फिर अपना हाथ छुड़ाकर जाने लगा। पर भक्त सूरदास को लगा कि स्वयं भगवान् कृष्ण ने आकर उन्हें बचाया था। उन्होंने अपने इस बचानेवाले को कसकर पकड़ लिया। लेकिन राही को तो जल्दी थी। वह जैसे-तैसे हाथ छुड़ाकर चलता बना। सूरदास बड़े दुखी हुए। अपनेको बड़ा कमजोर समझकर उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। उसी दुःख की घड़ी में यह दोहा उनके मुंह से निकला—

बांह छुड़ाये जात हो, निबल जान के मोंहि।
हिरदय से जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥

उनके हृदय से निकले इन शब्दों ने जाने कितने कमजोर भक्तों को सबल बना दिया। इतना ही नहीं, भगवान् को प्रेम की डोर में बांध दिया।

सूरदास का अब एक ही काम था—पद बनाना और गा-गाकर लोगों को सुनाना। सुननेवाले जो दे देते, उसीसे वह अपनी गुजर-बसर कर लेते। इसी बीच स्वामी वल्लभाचार्य से सूरदास की भेंट हुई। सूरदास के पदों की उनपर बड़ी छाप पड़ी। वह उन्हें अपने साथ वृंदावन ले गये। वहां उन्होंने उन्हें ठाकुरजी के मंदिर का प्रधान गायक बना दिया। यहीं रहकर 'सूरदास' ने अनगिनत पद रचे। वे 'सूर-सागर' और 'साहित्य-लहरी' नामक ग्रंथों में छपे हैं।

सूरदास को अपने से बड़ा असंतोष था। अपनेको वह बड़ा पतित, पापी और गयाबीता समझते थे और भगवान् से प्रार्थना करते रहते थे कि 'अब तो मुझे उबार लो।' कहते हैं कि एक बार सूरदास एकतारा लेकर गा रहे थे—

प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब द्यौस चारि के हौं तो जनमत ही कौ॥

वल्लभाचार्य सुनते रहे, फिर बोले, "सूर ह्वैके ऐसौ काहे को घिघियात हौ? कछू भगवत् लीला बरनन करौ।" कहते हैं, तभी से सूरदास ने भगवान् कृष्ण की बाल-लीला के पद रचने शुरू कर दिये।

'सूर-सागर' में भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, मुरली माधुरी, रूप माधुरी, और विनय आदि के पद

हैं। 'भ्रमर-गीत' में उन्होंने उस समय का वर्णन किया है, जब श्रीकृष्ण ब्रज को छोड़कर कंस का वध करने के लिए मथुरा चले जाते हैं और वहां से वह विरही गोपियों को समझाने के लिए उद्धव को भेजते हैं। गोपियां कृष्ण के वियोग में बहुत दुखी थीं और उद्धव उनको ज्ञान की बातें कहकर समझाने का प्रयत्न करते हैं।

गोपाल-कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन तो सूरदास की अनूठी चीज़ है। बाल-कृष्ण और यशोदा मैया की बातों को पढ़कर पाठक भाव-विभोर हो उठता है और अपने आंगन में ही गोपाल को दौड़ता-खेलता और माखन खाता देखता है।

जिस तरह तुलसीदास श्रीराम का चरित लिखकर अमर हो गये, उसी तरह सूरदास अपने विनय-पदों और श्रीकृष्ण की लीला के पदों से अमर हो गये हैं। हिंदी-साहित्य में सूरदास को सूर्य की उपमा देते हुए हिंदी के एक कवि ने लिखा है :

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहं तहं करत प्रकास।।

पर जन-साधारण के दिलों में सूरदास का क्या स्थान है, वह तो गांववालों की गंवई भाषा में यों कहा गया है—

जो कुछ रहा सो अंधरा[1] कहिगा,
कठवउ[2] कहेसि अनूठी ।
बचा-खुचा सो जोलहा[3] कहिगा,
और कहे सो जूठी ॥

कहते हैं, सूरदासजी के पदों का तानसेन पर बड़ा असर हुआ था और वह कह उठे थे—

किधौं सूर को सर लग्यौ,
किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लग्यौ,
तन मन धुनत सरीर ॥

सूरदास का देहांत संवत् १६२० में ८० वर्ष की अवस्था में पारासोली नामक गांव में हुआ । उनके निधन को पौने पांच सौ वर्ष हो गये, लेकिन उनके पद आज भी उनकी याद दिलाते हैं और आगे भी दिलाते रहेंगे । लीजिये, अब उनके कुछ चुने हुए पदों का आनंद लीजिये ।

---

[1] अंधरा=सूरदास, [2] कठवउ=तुलसीदास, [3] जोलहा=कबीरदास

: २ :

पद

: १ :

चरन कमल बंदौं हरि राई[१] ।
जाकी कृपा पंगु[२] गिरि लंघै अंधे कूं सब कुछ दरसाई ।।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र[3] धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार बंदौं तेहि पाई ।।

: २ :

अब के माधव मोहि उधारि[४] ।
मगन हौं[५] भव अंबुनिधि[६] में कृपासिंधु मुरारि ।।
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग ।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह[७] अनंग[८] ।।

---

[१] राजा, [२] लंगड़ा, [३] राजछत्र, [४] बचालो, [५] डूबा हूं, [६] समुद्र, [७] मगर, [८] कामदेव ।

मीन इंद्रिय अतिहि काटति मोट[१] अघ सिर भार[२]।
पग न इत उत धरन पावत उरझि[3] मोह सेवार[४]॥
काम क्रोध समेत तृसना पवन अति झकझोर।
नहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल बिह्वल सुनहु करुनामूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल[५]॥

: ३ :

अब हौं नाच्यौं बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना[६], कंठ विषय की माल।
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा शब्द रसाल।
भरम[७] भर्यो मन भयौ पखावज[८] चलत कुसंगति चाल॥
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दे ताल।
माया को कटि फैंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई[९] जल, थल सुधि नहिं काल[१०]।
'सूरदास' की सबै अविद्या[११], दूरि करहु नंदलाल॥

---

[१] बोझ, [२] भारी, [३] फंसकर, [४] पानी के अंदर उगनेवाले घास-फूस के पौधे। [५] किनारा, [६] साधुओं की लंबी कफनी, [७] धोखा, [८] मृदंग, [९] रूप बदलकर अनेक स्वांग दिखाये, [१०] न जाने कितना समय बीत गया, [११] अज्ञान, माया।

: ४ :

छांड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ।।
कहा भयौ पय[१] पान कराये विष नहिं तजत भुजंग[२] ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसि दिन रहत उमंग ।।
कागहि कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा[३] लेपन मरकट[४] भूषण अंग ।।
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो[५] करत निषंग[६] ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग ।।

: ५ :

जापर दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन बड़ो सुंदर सोइ जिन पर कृपा करै ।।
राजा कौन बड़ौ रावन तें गर्बहि गर्ब गरै[७] ।
रांकल[८] कौन सुदामा हूं ते आपु समान करै ।।
रूपल[९] कौन अधिक सीता ते जनम वियोग भरै[१०]।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें हरि पति पाइ बरै ।

---

[१] दूध, [२] सांप, [३] सुगंधित लेप, [४] बंदर, [५] खाली. [६] तरकस, [७] गल जाता है, [८] गरीब, रंक । [९] रूपवती, [१०] जन्म वियोग में बिताये ।

जोगी कौन बड़ो संकर तें ताको काम छरै[1]।
कौन बिरक्त अधिक नारद सों निसिदिन भ्रमत फिरै ॥
अधम सु कौन अजामिल हू ते जम तहं जात डरै।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ॥

: ६ :

जैसेहि राखौ तैसेहि रहौं।
जानत हौ दुख सुख सब जन कौ मुख-करि[2] कहा कहौं ॥
कबहुंक भोजन देत कृपा करि कबहुंक भूख सहौं।
कबहुंक चढ़ौं तुरंग महा गज कबहुंक भार बहौं ॥
कमल नयन घनस्याम मनोहर अनचर[3] भयौ रहौं।
'सूरदास' प्रभु भगत कृपानिधि तुम्हरे चरन गहौं ॥

: ७ :

तुम कब मोसौ पतित उधार्यो।
काहे को प्रभु बिरद बुलावत[4] बिनु मसकत[5] को तारयो ॥
गीध ब्याध पूतना जो तारी तिन पर कहा निहोरो[6]।
गनिका तरी आपनी करनी नाम भयो प्रभु तोरो ॥

---

[1] छले, [2] मुख से, [3] सेवक। [4] प्रशंसा करवाते हो, [5] परिश्रम, [6] एहसान,

अजामील द्विज जनम जनम को हुतो पुरातन दास।
नेक चूक तें यह गति कीन्हीं पुनि बैकुंठहि बास॥
पतित जानि कैं सब जन तारे रही न काहू खोट[1]।
तौ जानौं जो मो कहँ तारौ 'सूर' कूर सब ढोट[2]॥

: ८ :

प्रभु मोरे औगुन चित न धरौ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो[3]॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक[4] परो॥
यह दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार[5] कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलकै दोउ एक बरन भये सुरसरि नाम परौ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत 'सूर' स्याम झगरो।
अबकी बेरि मोहि पार उतारो नहिं पन जात टरौ॥

: ९ :

प्रभु हौं सब पतितन को टीको।
और पतित सब द्यौस चारि के[6] हौं तो जनमत ही को॥

---

[1] दोष, [2] बालक, [3] प्रण को पूरा करो, [4] व्याध।
[5] नाला, [6] थोड़े दिनों के।

बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही को।
मोहि छांड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जी को॥
कोउ न समरथ अब करिबे को खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज 'सूर' पतितनि में मोहू तें को नीको॥

: १० :

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै॥
कमल नैन को छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छांड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

: ११ :

रे मन मूरख जनम गंवायो।
करि अभिमान विषय सों राच्यौ[1] स्याम सरन नहिं आयो॥
यह संसार फूल सेंवर[2] को सुंदर देखि भुलायो।
चाखन लग्यो रुई उधरानी[3] हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे पहले नाहिं कमायो।
कहै 'सूर' भगवंत भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछितायो॥

---

[1] अनुरक्त रहा, [2] सेमर, [3] उड़ने लगी।

: १२ :

सोइ रसना जो हरिगुन गावै ।
नैननि की छबि यहै, चतुर सोइ जो मुकुंद दरसन हित धावै ।।
निर्मल चित्त सो,सोई सांचो,कृस्न बिना जिहिं अवरु न भावै ।
स्रवनन की जु यहै अधिकाई हरिजस नितप्रति स्रवनन पावै ।।
कर तेई जु स्याम को सेवैं चरननि चलि वृंदावन जावै ।
'सूरदास' है बलि ताकी जो संतन सों प्रीति बढ़ावै ।।

: १३ :

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नोनहरामी ।।
भरि-भरि उदर विषय को धावौं जैसे सूकर ग्रामी ।।
हरिजन छांड़ि हरीविमुखन की निस दिन करत गुलामी ।।
पापी कौन बड़ो है मो तें सब पतितन में नामी ।।
'सूर' पतित को ठौर कहां है, सुनिये श्रीपति स्वामी ।।

: १४ :

आजु नंद के द्वारे भीर ।
एक आवत एक जात बिदा होइ एक ठाढ़े मंदिर के तीर[1] ।।

---

[1] निकट,

कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोउ पहिरत कंचुकि[१] चीर।
एकन को दै दान समरपत[२] एकन को पहिरावत चीर ॥
एकन को भूषन पाटंबर[३] एकन को जु देत नग हीर[४] ।
एकन को पुहुपन की माला एकन को चंदन घसि बीर ॥
एकन को तुलसी की माला एकन को राखत दै धीर।
'सूरस्याम' घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर[५] ॥

: १५ :

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै[६] दुलरावै मल्हावै,[७] जोइ-सोइ कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया,[८] काहे न आनि सुआवै।
तूं काहे न बेगि सों[९] आवति, तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहु पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै[१०] रहि रहि, करि करि सैन बतावै[११] ॥
इहि अंतर[१२] अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि-दुर्लभ, सो नंद-भामिनि[१३] पावै ॥

---

[१] कंचुकी, कुरता, [२] देते हैं, सौंपते हैं, [३] रेशमी कपड़े, [४] हीरा, [५] धर्मात्मा। [६] हिलाती है, [७] चित्त बहलाती है, [८] नींद, [९] जल्दी से, [१०] मौन होकर, चुप रहकर, [११] इशारे से बताती है, [१२] मन में, [१३] यशोद।

: १६ :

सोभित कर नवनीत[१] लिये ।
घुटुरुन[२] चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि-लेप किये ॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक किये ।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिये ॥
कठुला कंठ, ब्रज[३] केहरि-नख[४] राजत रुचिर हिये ।
धन्य 'सूर' एको पल या सुख, का सत कल्प जिये ॥

: १७ :

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ[५] कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया[६] ॥
कबहुंक सुंदर बदन बिलोकति उर आनंद भरि लेत बलैया ।
कबहुंक बल[७] को टेरि बुलावति इहि आंगन खेलो दोउ भैया
कबहुंक कुल देवता मनावति चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया[८] ।
'सूरदास' प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नंदरैया[९] ॥

: १८ :

चलत देखि जसुमति सुख पावै ।
ठुमुक ठुमुक धरनी-धर[१०] रेंगत जननिहि खेल दिखावै ॥

---

[१] माखन, [२] घुटना, [३] हीरे का पदक, [४] बाघ का नख, [५] जल्दी-से, [६] पांव, [७] बलदाऊ, [८] बाल-कृष्ण, [९] नंदराय के प्रतापी बालक, [१०] श्रीकृष्ण ।

देहरी लौं चलि जाति बहुरि फिरि फिरि इतही को आवै ।
गिरि गिरि परत बनत नहि नांघत सुर सुनि सोच करावै ।।
कोटि ब्रह्माण्ड करत छिन भीतर हरत बिलंब न लावै ।
ताको लिये नंद की रानी नाना रूप खिलावै ।।
तब जसुमति कर टेकि स्याम को क्रम क्रम कै उतरावै[1] ।
'सूरदास' प्रभु देखि देखि कै सुर नर बुद्धि भुलावै[2] ।।

: १६ :

कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै ।
सब लरिकन मैं सुन सुंदर सुत तो श्री अधिक चढ़ै ।
जैसे देखि और ब्रज बालक त्यौं बल बैस बढ़ै ।
कंस केसि बक बैरिन के उर अनुदिन अनल डढ़ै[3] ।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लियो पढ़ै[4] ।
अंचवत[5] पै तातो जब लाग्यो रोवत जीभ गढ़ै[6] ।।
पुनि, पीवत ही कच टकटोवे[7] झूठै जननि रढ़ै[8] ।
'सूर' निरखि मुख हँसत जसोदा सो सुख मुख न कढ़ै[9] ।।

---

[1] धीरे-धीरे पार करती है, [2] बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है, [3] जलावे, [4] सिखाये अनुसार कर लिया, [5] पीते हुए, [6] गाढ़ी करके, भीतर खींच करके, [7] टटोलते हैं, [8] कहती है, [9] मुख से कहते नहीं बनता ।

: २० :

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूं है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी[१] ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत[२] न्हवावत ओंछत[३] नागिनि सी भुंई लोटी ॥
काचो दूध पिवावत पचि-पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी[४] ॥

: २१ :

मैया मोहिं बड़ो करि दै री।
दूध दही घृत माखन मेवा जो मांगौं सो दै री ॥
कछू हवस राखै जिन मेरी[५] जोइ-जोइ मोहिं रुचै री।
रंगभूमि में कंस पछारी कहौं कहां लौं मैं री ॥
'सूरदास' स्वामी की लीला मथुरा राखौं जौ री[६]।
सुंदर स्याम हँसत जननी सों नंद बबा की सौं री[७] ॥

: २२ :

जागिये व्रजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृंद सकुचित भए भृंग लता भूले ॥

---

[१] चोटी, [२] गूंथते हुए, [३] कंघा करते हुए, [४] जोड़ी, [५] मेरी कोई इच्छा अपूर्ण मत रहने दे, [६] जो मैं मथुरा को रहने दूं, यानी मैं मथुरा नगरी को नष्ट कर दूंगा, [७] नंदबाबा की सौगंध।

तमचुर[1] खग रौर[2] सुनहु बोलत बनराई।
रांभति गौ खरिकन[3] में बछरा हित धाई ॥
बिधु मलीन रबिप्रकाश गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ अंबुज[4] कर धारी

: २३ :

मैया मोहिं दाऊ[5] बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दे-दे हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुं न खीझै ॥
मोहन को मुख रिस[6] समेत लखि जसुमति सुनि-सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई[7] जनमत ही को धूत[8]।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

: २४ :

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भई गैयन के पाछे मधुवन मोहिं पठायो।

---

[1] रात को उड़नेवाली पक्षी, [2] आवाज़, [3] गाय बांधने का बाड़ा, [4] कमल, [5] बलदाऊ, बड़े भैया, [6] क्रोध। [7] झूठ बोलनेवाला, [8] धूर्त,

चार पहर बंसीबट भटक्यो सांझ परे घर आयो ॥
मैं बालक बहियन को छोटो छींको केहि बिधि पायो ।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जानि परायो जायो ॥
यह लै अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
'सूरदास' तब बिहंसि जसोदा ले उर कंठ लगायो ॥

: २५ :

मुरली मधुर बजाई स्याम ।
मन हरि लियो भवन[1] नहिं भावै व्याकुल ब्रज की बाम[2] ॥
भोजन भूषन की सुधि नाहीं तनु की नाहिं संभार ।
गृह गुरु लाज सूत सों तोरी डरी नहीं व्यवहार ॥
करत सिंगार बिबस भई सुंदरि अंगनि गई भुलाई[3] ॥
'सूर' स्याम बन बेनु बजावत चित हित रास रमाई ॥

: २६ :

निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे ॥
दृग अंजन लागत नहि कबहूं उर कपोल भए कारे ।
कंचुकि नहि सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे ॥

[1]घर, [2]स्त्रियां, [3]सिंगार करते समय अपने शरीर की सुध नहीं रही, कहीं की चीज़ कहीं पहन ली ।

'सूरदास' प्रभु अम्बु बढ्यो है गोकुल लेहु गबारे।
कहं लौं कहौं स्याम घन सुंदर विकल होत अति भारे॥

: २७ :

वा पट पीत की फहरानि[१]
कर धरि चक्र चरन की धावनि[२], नहिं बिसरति वह बानि[३]॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच[४] रज की लपटानि।
मानो सिंह सैल तें निकस्यौ महामत्त गज जानि॥
जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि[५]।
सोई 'सूर' सहाय हमारे; निकट भये हैं आनि[६]॥

: २८ :

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन, परितिग्या[७] मोरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकैं, पाइं पयादे[८] धाऊं।
जहं-जहं भीर[९] परै भक्तन पै, तहं-तहं जाय छुड़ाऊं॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो।
देखि बिचारि भक्त हित कारन, हांकत हौं रथ तेरो॥
जीतें जीति भक्त अपने की, हारें हारि बिचारौं।
'सूरदास' सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन[१०] जारौं॥

---

[१] फहरना, [२] दौड़ना, [३] रूप, [४] केश, [५] मर्यादा, [६] आकर, [७] प्रतिज्ञा, [८] पैदल, [९] संकट, [१०] सुदर्शन चक्र।

: २९ :

गोकुल सबै गोपाल उपासी[1] ।
जोग अंग साधन जे उधो ते सब बसत ईसपुर कासी ।।
जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि
रस रासी ।
अपनी सीतलताहि न छांड़त जद्यपि है ससि राहु-गरासी ।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत
उदासी ।
'सूरदास' ऐसी को बिरहिनि मांगति मुक्ति तजे धनरासी ।

: ३० :

आयो घोस[2] बड़ो ब्योपारी ।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आय उतारी ।।
फाटक[3] दै करि हाटक[4] मांगत भोरिय निपट सुधारी ।।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी ।।
इनके कहे कौन डहकावैं[5] ऐसो कौन अजानी ?
अपनो दूध छांड़ि को पीवै खार कूप को पानी ।।
ऊधो जाहु सबार यहां तें बेगि गहरु[6] जनि लाओ ।
मुंह मांगो पैहो 'सूरज' प्रभु साहसि आनि दिखाओ ।।

---

[1] उपासना करनेवाले, [2] अहीरों के गांव, [3] फटकन, [4] सोना, [5] धोखा खाये [6] देर ।

: ३१ :

ऊधो मन नाहीं दस बीस।
एक हतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस ?
भइ अति सिथिल सबै माधव बिनु यथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रहे-आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस[1] ॥
तुम तौ सखा स्यामसुंदर के सकल जोग के ईस।
'सूरजदास' रसिक की बतियां पुरवौ मन जगदीस ॥

: ३२ :

हालरो हलरावै माता। बलि बलि जउं घोष-सुखदाता ॥
जसुमति अपनो पुन्य बिचारै। बार बार सिसु बदन निहारै॥
अंग फरकाय अलप मुसुकाने। या छबि पर उपमा को जाने॥
हलरावति गावति कहि प्यारे। बालदसा के कौतुक भारे ॥
महरि[2] निरखि मुख हिय हुलसानी[3]। 'सूरदास' प्रभु
सारंग-पानी ॥

: ३३ :

अविगत[4] गति[5] कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल को रस अंतरगत[6] ही भावै ॥

[1] बरस। [2] यशोदा, [3] प्रसन्न हुई, [4] जो जाना न जाय,
[5] गति, [6] मन में,

परम स्वाद सब ही जु निरंतर अमित तोष उपजावै ।।
मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै ।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालंब मन चकृत[1]
धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें 'सूर' सगुन लीलापद
गावै ।

: ३४ :

अब मोहिं भीजत क्यों न उबारो ।
दीनबंधु करुनामय स्वामी जन के दुःख निबारौ ।।
ममता घटा, मोह की बूंदें, सलिता[1] मैन[2] अपारौ ।
बूड़त कतहुं थाह नहिं पावत गुरु जन ओट अधारो[3] ।।
गरजत क्रोध, लोभ को नारो सूझत कहुं न उधारो।
तृसना तड़ित चमकि छिन ही छिन अहनिस यह तन
जारो ।
यह सब जल कलिमलहि गहे है बोरत सहस प्रकारो ।
'सूरदास' पतितन को संगी बिरदहिं नाथ सम्हारो ।।

: ३५ :

कहा कमी जाके राम धनी ।
मनसानाथ मनोरथ-पूरन सुखनिधान जाकी मौज घनी ।।

---

[1] चकित, [2] नदी, [3] काम, [4] आधार ।

अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चार पदारथ देत छनी[१] ।
इंद्र समान हैं जाके सेवक मो बपुरे की कहा गनी[२] ॥
कहै कृपन की माया कितनी करत फिरत अपनी अपनी ॥
खाइ न सकै खरच नहिं जानै ज्यौं भुअंग सिर रहत मनी ॥
आनंद मगन रामगुन गावैं दुख संताप की काटि तनी[३] ॥
'सूर' कहत जे भजत राम को तिन सों हरि सों सदा बनी॥

: ३६ :

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ॥
या देही को गर्व न करिये स्यार काग गिधि खैहैं ॥
तीन नाम तन बिष्टा कृमि ह्वै अथवा खाक उड़ैहैं ॥
कहं वह नीर, कहां वह शोभा, कहं रंग रूप दिखैहैं ।
जिन लोगन सों नेह करतु हौ तेही देखि घिनैहैं[४] ।
घर के कहत सबारे[५] काढ़ा भूत होय घर खैहैं ।
जिन पुत्रनहिं बहुत प्रतिपारयो देवी देव मनैहैं ।
तेइ लै बांस दयो खोपड़ी में सीस फोरि बिखरैहैं ।
अजहूं मूढ़ करो सतसंगति सतन में कछु पैहैं ॥
नर बपु[६] धरि जाने नहिं हरि को जम की मार जु खैहैं ।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु बृथा सुजन्म गंवैहैं ॥

---

[१] क्षरण भर में,　[२] गिनती,　[३] डोर,　[४] घृणा करेंगे,　[५] शीघ्र
[६] मनुष्य-शरीर ।

: ३७ :

जो पै राम नाम धन धरतो ।
टरतौ नहीं जनम जनमांतर कहा राज जम करतो ॥
लेतो करि ब्योहार सबनि सों मूल गांठ में परतो ।
भजन प्रताप सदाई घृत मधु, पावक परे न जरतो ॥
सुमिरन गोन बेद बिधि बैठो बिप्र-परोहन भरतो ।
'सूर' चलत बैकुंठ पेलि[1] के बीच कौन जो अरतो[2] ॥

: ३८ :

अपने जान मैं बहुत करी ।
कौन भांति हरि कृपा तुम्हारी सो स्वामी समुझि न परी ॥
दूरि गयो दरसन के ताईं व्यापक प्रभुता सब बिसरी ।
मनसा वाचा कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी ॥
गुन बिनु गुनी, सुरूप रूप बिनु, नाम लेत श्रीस्याम हरी ।
कृपासिंधु अपराध अपरिमित छमो 'सूर' ते सब बिगरी ॥

: ३९ :

मो देखत जसुमति तेरे ढोटा[3] अबही माटी खाई ।
इह सुनि कैं रिस करि उठि धाई बांह पकरि लै आई ॥
इक कर सौ भुज गहि गाढ़े कर[4] इक कर लोने सांटी[5] ।
मारति हों तोहि अबहिं कन्हैया बेगि न उगले माटी ॥

---

[1] बेरोक-टोक, [2] अड़ता [3] बेटा [4] मजबूती से [5] छड़ी

ब्रज लरिका सब तेरे आगे झूंठी कहत बनाई ।
मेरे कहे नाहिं तू मानति दिखरावों मुख बाई[1] ॥
अखिल ब्रह्मांडखंड की महिमा देखराई मुख माहीं ।
सिंधु सुमेर नदी बन परबत चकित भई मनमाही ॥
कर तैं सांटि गिरत नहिं जानी भुजा छांड़ि अकुलानी ।
'सूर' कहै जसुमति मुख मूंदहु बलि गई सारंग पानी[2] ॥

: ४० :

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
बृन्दाबन गोकुल-तन[3] आवत, सघन तृनन की छाहीं ॥
प्रातसमय माता जसमित अरु, नंद देखि सुख पावत ।
माखन-रोटी दह्यो[4] सजायो[5] , अति हित साथ खवावत ।
गोपी ग्वाल-बाल-संग खेलत, सब दिन हँसत सिरात[6] ।
'सूरदास' धनि-धनि ब्रजवासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥

: ४१ :

अब हौं कहो कौन दर[7] जाउं ।
तुम जगुपाल चतुर चिन्तामनि[8] दीनबंधु सुन नाउं ।
माया कपट रूप कौरव दल लोभ मोह मद भारी ।
परबस परी सुनहु करुनामय मम-मति पतिव्रतधारी ॥
काम दुसासन गहै लाज-पट मरन अधिक पति[9] मेरी ।
सुरनरमुनि कोउ निकट न आवत 'सूर' समुझि हरिचेरी ॥

●

---

[1]मुंह खोलकर [2]सारंग धनुष धारण करने वाले भगवान् [3]ओर [4]दही [5]सजा हुआ [6]बीतता है [7]द्वार [8]सब कामनाओं के पूरक [9]प्रतिष्ठा

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

मूल्य
सैंतीस नये पैसे